है।" प्रसादजी की परिभाषा में सत्यम्, शिवं, सुन्दरम् की बात निहित है। परंतु संकल्पात्क अनुभूति पर आलोचकों में प्रश्न है ..... आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति यह भाव पक्ष है, किंतु कला पक्ष का उल्लेख नहीं है। काव्य को ज्ञानधारा कहना कुछ अटपटा सा लगता है .. स्पष्ट बोध नहीं होता किसी भी कविता का संबंध नकारात्मक नहीं होना चाहिए आदि। फिर भी काव्य का गौरव बढानेवाली और मौलिक परिभाषा कही जा सकती है।

प्रेमचंद ने साहित्य की बहुत ही सरल परंतु अर्थगर्भित परिभाषा की है - **'साहित्य जीवन की अलोचना है।'** यह बहुत ही व्यापक तथा उतनी ही मौलिक परिभाषा है। साहित्य में जीवन की आलोचना ही तो होती है चाहे वह कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि विधा के रुप में जो विवेक प्रस्तुत होता है वह मनुष्य के हर्षोल्हारस, सुख-दुःखों, संघर्षों, पीडाओं, नीति-अनीतिओं, रुढि-रंपराओं, आदर्शों जीवन-मूल्यों संबंधी प्रस्तुतिकरण जीवन से ही तो जुडा होता है। उसी का लेखा-जोखा साहित्यकार अपनी रचना में प्रस्तुत करता है।

डॉ. नगेंद्र ने काव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है - **'रसात्मक शब्दर्थ ही काव्य है।'** यह रसप्रधान परिभाषा है। विश्वनाथ की परिभाषा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' का अनुकरण सी लगती है। शब्दार्थ युक्त वाक्य से रस की सृष्टि हो इस बात पर उसका बल है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत काव्य परिभाषाएँ :

कविता और साहित्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य-लक्षण प्रस्तुतकार साहित्य के स्वरुप को स्पष्ट करने का प्रयास किय है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की सुरुवात प्लेटो और अरस्तु से होती है। प्लेटो ने काव्य-कला को त्याज्य एवं हेय मानकार उसकी भर्त्सना की परंतु उसका शिष्य अरस्तु ने मात्र काव्य के लिए अनुकरण की अनिवार्यता मानी। उन्होंने कहा कि कला प्रकृति का अनुकरण है और वह अनुकरण भाषा के माध्यम से किया जाता है। वास्तव में जिन पाश्चात्य विचारकों ने काव्य-लक्षणार्थ मौलिक परिभाषाएँ प्रस्तुत की है उन्हीं का यहाँ विचार करेंगे।

★ 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में लिखा है - Poetry art, work of the poet' - Encyclopaedia Britanica' अर्थात कवि का कार्य, कला काव्य है। यह अस्पष्ट परिभाषा है। इसमें काव्य-लक्षण पूर्णतः स्पष्ट नहीं होते। कवि के माध्यम से काव्य को समझना कठिन है।

★ **कॉलरिज** के मतानुसार - Poetry is the best words in their best order." अर्थात सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम मे काव्य है।

यह परिभाषा भी अस्पष्ट है। सर्वोत्तम शब्द का अर्थ है उत्तम अर्थ देनेवाले शब्द। तो ये उत्तम शब्द कौनसे? उनका सर्वोत्तम क्रम कैसे समझना यह कठिन कार्य है। साधारणतः स्वर्ग, अमृत, सोना, सौंदर्य उत्तम अर्थ के परिचायक तो नरक, गंधगी, मृत्यु बुरे अर्थ की अभिव्यक्ति करनेवाले शब्द हम मानते है, परंतु साहित्यकार के लिए अपनी भावाभिव्यक्ति लिए हर शब्द का समान महत्व होता है। वह कोई अच्छा बुरा ऐसा क्रम नहीं लगाता।

मॅथ्यू आर्नाल्ड के अनुसार - Poetry is at bottom, a criticism of life." Arn(अर्थात कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है। इस परिभाषा से काव्य-लक्षण स्पष्ट हो जाते है। यह प्रेमचंद की परिभाषा 'साहित्य जीवन की आलोचना है' से बहुत कुछ मेल खाती है। फिर भी आलोचक की दृष्टि से यह दोषरहित नहीं है। आलोचकों का कहना है कि जीवन की आलोचना साहित्य के अन्य विधाओं से भी हो सकती है केवल कविता से नहीं परंतु अर्नाल्ड ने कविता का ही माध्यम अपनाया है।

हडसन की काव्य परिभाषा काफी पर्याप्त है वे लिखते है - "Potry is an interpretation of life through imagination and emotion." अर्थात काव्य कल्पना और भावना के माध्यम से जीवन की व्याख्या है।

वर्डसवर्थ - अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ का कहना है - Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes it's origin from emotions recollected in tranquillity." - Wordsworth. अर्थात कविता शांति के समय में स्मरण किए गए प्रबल मनोवेगों का सहज उद्रेक है।

इस परिभाषा पर आलोचकों ने यह आरोप लगाया है कि १) कविता भावों का स्मरण नहीं होती बल्कि भावों की अभिव्यक्ति होती है। २) शांति के समय में स्मृत मनोवेगों का सहज उद्रेक कविता कहा गया है, परंतु ऐसे समय में स्मृत भाववेगों मे सुख-दुःखपूर्ण घटनाएँ, मन का कम्प आदि भी प्रस्फूटित या स्मृत होते है क्या उसे भी कविता की कोटि में समाहित करे? ३) तिसरी बात यह की इसमें अतिव्याप्ति दोष है।

वर्डस्वर्थ की इस परिभाषा में आलोचकों ने चाहे जितने भी दोष निकाले हो परंतु यह परिभाषा काव्य-लक्षण के बहुत कुछ तथ्यपूर्ण बातों को स्पष्ट करती है। अनुभूति की अभिव्यक्ति का विवेचन इसमें समाहित है।

चैंबर्स डिक्शनरी - में प्रस्तुत परिभाषा अधिक विचारणीय है। उपर्युक्त परिभाषाओं के दोष निकालकर काव्य के उपयुक्त तत्त्वों का अन्तर्भाव करने की कोशिश की गई है - Poetry is the art of expressing in meledious words, thoughts, which are the creations of imagination and feelings." - Chember's Dictionary. अर्थात कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों मे अभिव्यक्त करने की कला कविता है।

इस परिभाषा में काव्य के सभी तत्त्व समाहित है। कल्पना, अनुभूति, विचार और अभिव्यंजना कौशल्य आदि तत्व इसमें अंतर्भूत है। फिर भी यह परिभाषा दोषरहित नहीं है। इसमें केवल कोमल भाषा पर ही बदल देकर उसे काव्य का माध्यम बताया है, जबकि विषयानुरूप कर्कश, कठोर शब्दों का भी काव्य में प्रयोग किया जाता है। वीर और भयानक रस के लिए ऐसे कठोर वर्णों का प्रयोग किए बिना प्रभावाभिव्यक्ति संभव नहीं होती, परंतु यहाँ उसका उल्लेख न कर मधुकर शब्दों का आग्रह है। अतः इस परिभाषा में भी पूर्णता का अभाव है।

प्रकरण २

साहित्य के हेतु

❖❖❖

साहित्य का हेतु और प्रयोजन को समझने मे गडबडी कर दी जाती है। एक दृष्टि से वे समानार्थी भी है। अभिप्राय, उद्देश्य, मतलब, आशय आदि इनके अर्थ है। फिर भी वे एकार्थी नहीं है, अपितु उनमें अंतर है। प्रयोजन यह फल-स्वरूप है तो हेतु बीज स्वरुप है। भारतीय काव्यशास्त्र में इनपर काफी चर्चा की गई है। साहित्य के हेतु से तात्पर्य है वह तत्व जो साहित्य रचना का कारण या प्रेरणा स्त्रोत है। संसार में विभिन्न प्रकार की घटित घटनाओं का भला-बूरा प्रभाव व्यक्ति के मन पर पडता है। उसे वह अभिव्यक्त करना चाहता है। कल्पना से युक्त असाधारण शब्दावलीं भावाभिव्यक्ति की छटपटाहट ही साहित्य कहलती है। परंतु साहित्य निर्माण की क्षमता हर किसी व्यक्ति में नहीं होती। वह केवल उसी व्यक्ति में होती है जो एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा से संपन्न होता है। यही प्रतिभा साहित्य के हेतु, कारण या प्रेरणा स्त्रोत कहलाती है।

साहित्य के माध्यम से हम अपने भाव, आशा, आकांक्षाएँ, विचार, संकल्पना आदी को अभिव्यक्त करते है। अभिव्यक्ति की कामना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। छोटे-बडे सभी अपनी आत्मानुभूति दुसरों को सूनाना चाहते है। उदात्त भावों की सृष्टि के लिए साहित्य एक साधन है। जिसका मानवी जीवन से अटूट सम्बन्ध है। जीवन के आदर्श साहित्य के आदर्श है, जीवन की प्रेरणाएँ साहित्य की प्रेरणाएँ है। वैदिक साहित्य में जीवन की मूल प्रेरणा के संदर्भ में पुत्रैषणा (पुत्र की चाह), वित्तैषणा (धन की चाह), लौकैषणा (यश की चाह) की चर्चा की गई है। ये तीनों एषणाएँ सभी मानव-मात्र में विद्यमान है और इन तीनों की चाह भी साहित्य की मूल प्रेरणा है। साहित्यकार या कवि भी बिना हेतु साहित्य रचना नहीं करता इच्छित फल की प्राप्ति तथा धन संपत्ति, और यश की कामना उनमें निहित होती है।

एडलर ने साहित्य निर्मिति का मूल कारण या प्रेरणा हमारी क्षति या अभाव-पूर्ति को माना है। मनुष्य में जो हीनता की भावना होती है या किसी चीज का अभाव होता है उसे दूर करने की कोशिश में अर्थात क्षति-पूर्ति के रुप में साहित्य सर्जन करता है। लंगडे, काने में प्रायः यह बात देखी जा सकती है। अंधो की स्मरण-शक्ति काफी प्रबल होती है। कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास इसका उदाहरण है। जायसी में भी कुरुपता की हीन भावना थी। तुलसीदास भी अपनी पत्नी रत्नावली के दुत्कार से उत्पन्न हीनता को दूर करने

के लिए साहित्य आराधना की और हिंदी के महाकवि बन गए।

फ्रॉइड ने काव्य को दमित कामवासनाओं की तृप्ति का साधन माना है। हमारी काम-भावनाएँ अश्लील मानकर त्याज्य समझी जाती है, परंतु वही काव्यादि में (श्रृंगार रस है) ग्रहण कर ली जाती है, तो उसका भाव उदात्त हो जाता है।

रुचि-परिष्कार की भावना भी साहित्य निर्मिति का कारण है। मनुष्य की सत्य-निष्ठा भी इस बात को पुष्टि देती है। वैसेही जिज्ञासा, तन्मयता, अत्माभिव्यक्ति, यश की कामना आदि साहित्य की मूल प्रवृत्ति या कारण के रूप में गिनाये जा सकते हैं। साहित्य के इस कारणों या हेतु पर भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी विस्तार से चर्चा की है। यहाँ उनकी मान्यताओं की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना उचित होगा।

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्य रचना के तीन हेतु माने है, प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास। प्रतिभा को लगभग सभी आचार्यों ने अनिवार्य महत्व दिया है। ऐसे व्यक्ति को जिसमें प्रतिभा नहीं, काव्य-रचना सिखाई नहीं जा सकती, जैसे अंधे को सूरज नहीं दिखाया जा सकता। दार्शनिक प्रवृत्ति के भारतीय आचार्य इस संपूर्ण सृष्टि को प्रतिभा का विवर्त मानते है। **आचार्य भामह** ने काव्य हेतु के रुप में केवल 'प्रतिभा' को माना है। उनके अनुसार-

"गुरुपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोप्यलम्।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः॥"

अर्थात गुरु के उपदेश से जडबुद्धिवाले व्यक्ति भी शास्त्र का अध्ययन कर सकते है, परंतु काव्य का कर्ता या काव्य-रचना तो कोई प्रतिभाशाली ही कर पाता है। स्पष्ट है कि भामह ने 'प्रतिभा' को ही साहित्य का प्रधान हेतु माना है। 'काव्यदर्श' के रचयिता **आचार्य दण्डी** ने भामह के विचारों को संशोधित करते हुए कहा है कि काव्य-रचना में केवल 'प्रतिभा' ही मूल हेतु नहीं है, अपितु व्युत्पत्ति और अभ्यास ये दोनों हेतु भी उतने ही आवश्यक है जितनी प्रतिभा। दण्डी ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास की समन्विती को काव्य हेतु के रुप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार -

"नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मलम्।
अमन्दश्चभियोगोस्याः कारणं काव्य संपदः॥"

अर्थात जन्मजात प्रतिभा अत्याधिक सुसंस्कृत तथा निर्मल प्राप्त किया हुआ ज्ञान और निरंतर अभ्यास ही काव्य रुपी संपत्ति के कारण है। आ. दण्डी प्रतिभा को नैसर्गिक शक्ति मानते हुए भी उसके उत्कर्ष के लिए व्युत्पत्ति और अभ्यास की आवश्यकता पर अधिक जोर देते है। दूसरी ओर उनका यह कहना है कि व्यक्ति के पास प्रतिभा न हो तो भी केवल व्युत्पत्ति और अभ्यास के द्वारा काव्य-रचना की जा सकती है। शास्त्राध्ययन और अखंड प्रयत्न से सरस्वती की उसपर कृपा होती ही है।

आचार्य वामन ने लोकविद्या और प्रकीर्ण को काव्यांग कहा है - "लोकोविद्या प्रकीर्णच्च

काव्यांगानि" लोक से वामन का अभिप्राय लोकव्यवहार से है। विद्या से शास्त्रज्ञान, स्मृति कोश, कला, छंदशास्त्र, कामशास्त्र, दंडनीति आदि से है। वामन जिसे विद्या कहते है वह अन्य आचार्यों की दृष्टि से 'व्युत्पत्ति' है। प्रकीर्ण से उनका तात्पर्य काव्य-परिचय, काव्य-रचना, अभ्यास, वृद्ध सेवा, प्रतिभा और चित्त की एकाग्रता से है। वृद्ध सेवा से तात्पर्य काव्य मर्मज्ञों की सेवा से प्राप्त काव्य रचना विषयक ज्ञान। प्रतिभा को उन्होंने प्रकीर्ण के अंतर्गत रखा है, परंतु वे यह स्वीकार करते है कि प्रतिभा कवित्व का बीज है - 'कवित्व बीजं प्रतिभानम्।'

आचार्य रुद्रट ने 'काव्यालंकार' में प्रतिभा को 'शक्ति' कहा और शक्ति, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को काव्य का हेतु माना है। उनके मतानुसार 'शक्ति' ही काव्य सृजन का मूल हेतु है। उसी के बल पर कवि शब्दों और अर्थों के अवलोकन की उचित परख कर सकता है। व्युत्पत्ति के बल पर काव्य-दोषों का निराकरण कर अलंकार, बिम्ब, मिथकादि काव्य-तत्त्वों के उपादानों की शक्ति प्राप्त करता है और अभ्यास से अपनी रचना मे संस्करण, परिमार्जन कर निखार लाता है।

आचार्य राजशेखर ने प्रतिभा और शक्ति में थोडा हेर-फेर कर प्रतिभा की तुलना में शक्ति को अधिक महत्वपूर्ण माना है। उनका कहना है समाधी एवं अभ्यास से उत्पन्न 'शक्ति' ही काव्य का मूल कारण है। शक्ति ही काव्य की कर्ता है और प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति उसके कर्म। प्रतिभा का अर्थ उन्होंने प्रतिमान या प्रतिभासित होना के रुप में ग्रहण किया है।

आचार्य मम्मट शक्ति, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को समन्वित रुप से काव्य का हेतु मानते है -

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यासः इति हेतुः तदुद्भवे॥"

अर्थात काव्य रचना की शक्ति, लोकशास्त्र आदि का सम्यक ज्ञान, काव्यमर्मज्ञों से प्राप्त शिक्षा से प्राप्त निपुनता तथा काव्यज्ञों के निर्देशन में किया गया काव्य रचना का निरन्तर अभ्यास ही काव्य निर्माण का मूल हेतू या कारण है। आ. मम्मट की धारणा है कि संस्कार गत शक्ति ही काव्य का मूल बीज है। उसी के बल कवि सृजन का कार्य कर सकता है। उसके बिना काव्य रचना संभव नहीं। यदि कोई इसके अभाव में काव्य की रचना करता है, तो वह काव्य अपने प्रभाव से वंचित रह जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत के आचार्यों ने साहित्य के हेतु के रुप में प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को ही विशेष महत्व दिया है, परंतु कुछ आचार्यों ने समाधि को भी साहित्य हेतु के अंतर्गत रखा है। हिंदी साहित्य के रीतिकालीन आचार्यों ने इस संदर्भ में संस्कृत के आचार्यों का ही अनुकरण किया है। यहाँ हम उपर्युक्त हेतुओं के स्वरुप के संदर्भ में चर्चा करेंगे।

१) प्रतिभा :

संस्कृत के प्रायः सभी आचार्यों ने प्रतिभा के महत्व को स्वीकारा है। अधिकांश आचार्यों ने प्रतिभा को जन्मजात शक्ति माना है। प्रतिभा के शक्ति और संस्कार विशेष पर्यायवाची शब्द है। प्रतिभा वह विशिष्ट अंतःशक्ति है जिसमे निर्माण और रचना की विरल क्षमता होती है। जिस व्यक्ति में प्रतिभा होती है वे ही सत्काव्य की रचना करने में समर्थ होता है। प्रतिभा उस प्रज्ञा का गम है जो नित नूतन रसानुकूल विचार उत्पन्न करती है - **"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा"** (आ. भट्टतौत) दण्डी के अनुसार प्रतिभा पूर्व जन्म के संस्कारों द्वारा प्राप्त होती है - **"पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्"** वामन जन्म-जन्मांतर के संस्कार-विशेष को प्रतिभा कहते है, जिसके बिना काव्य सृजन संभव नहीं है, यदि होता भी है तो हास्यास्पद होता है। रुद्रट के अनुसार प्रतिभा वह है जो मन की एकाग्रावस्था में जिसमें अभिधेय का अनेक रुपों में विस्तारण होता है और जिसमें अक्लिष्ट पद सूझ पडते है, उसे प्रतिभा शक्ति कहते है। कुंतक ने "कवि शक्ति को प्रतिभा कहा है। आ. मम्मट ने प्रतिभा के लिए 'शक्ति' शब्द का प्रयोग कर लिखा है "शक्ति कवित्व का बीज रुप संस्कार-विशेष है।" जिसके बिना काव्य सृजन नहीं होता यदि होता भी है तो उपाहासात्मक होता है। वाग्भट ने प्रतिभा की परिभाषा इस प्रकार की है - "प्रसन्न पदावली, नित नूतन अर्थो तथा उक्तियों का उद्‌बोधन करनेवाली कवि की स्फुरणशील सर्वतोमुखी बुद्धि को 'प्रतिभा' कहते है।"

राजशेखर के अनुसार प्रतिभा वह है जो शब्दों के समूह को, अर्थों के समुदाय को अलंकार एवं सुंदर उक्तियों को अनन्यसाधारण सामुग्री के रुप में काव्य-सामग्री को हृदय के भीतर सुझाती है।

वाग्भट्ट ने कहा है -

'प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूषणम्।
भूशोलत्ति कृदभ्यास इत्याद्यकविसंकथा॥"

अर्थात प्रतिभा काव्य का अनिवार्य हेतु है, व्युत्पत्ति काव्य का आभूषण है, अभ्यास केवल एक ग्राह्य काव्य-हेतु के रुप में होता है अनिवार्य नहीं। हेमचंद्र ने प्रतिभा को ही काव्य हेतु कहते हुए कहा है -

'प्रतिभाऽस्य हेतुः। व्युत्पत्यासाभ्यां संस्कार्या।"

अर्थात प्रतिभा ही काव्य हेतु है, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास तो उस प्रतिभा का संस्कार या परिस्कार ही करते हैं।

निष्कर्ष यह कि कवि-कर्म में प्रतिभा का महत्वपूर्ण योग होता है। गहरी सौदर्यानुभूति, नूतन पदावली की सामजस्यपूर्ण योजना, किसी भाव में एकाग्र होना इत्यादी सभी कार्य प्रतिभा पर ही निर्भर होते है। तभी तो दण्डी के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने प्रतिभा को ही काव्य का मूल हेतु माना है।

आ. अभिनव गुप्त ने 'अपूर्वस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा' को प्रतिभा कहा है। जगन्नाथ, हेमचंद्र आनंदवर्धन आदि ने भी प्रतिभा की परिभाषा देने की कोशिश की है। स्पष्ट है कि इन आचार्यों ने अनुसार प्रतिभा का सम्बन्ध पूर्वजन्म से है और वह अर्जित शक्ति नहीं है। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि अधिकांश भारतीय आचार्य प्रतिभा के साथ निपुनता और अभ्यास को भी आवश्यक काव्य-हेतु के रुप में स्वीकार करते है। कवि के लिए केवल प्रतिभा पर्याप्त नहीं है। व्युत्पत्ति और अभ्यास के बिना प्रतिभा निष्क्रिय हो जाती है।

प्रतिभा के भेद :

आचार्य रुद्रट ने प्रतिभा के प्रमुख दो भेद माने है - १) सहजा २) उत्पाद्या। सहजा वे प्रतिभा है जो काव्य-सृजन के मूल में होती है। वह सहज स्वाभाविक होती है जबकि उत्पाद्या शास्त्राध्ययन से उत्पन्न की जा सकती है। अभिनव गुप्त ने भी प्रतिभा के दो भेद स्वीकार किए हैं - १) आख्या २) उपाख्या। कवि की प्रतिभा आख्या कहलाती है तो समालोचक की या सहृदय की प्रतिभा उपाख्या।

आ. राजशेखर ने भी प्रतिभा के दो भेद माने है। १) कारयित्री २) भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा कवि प्रतिभा है जो साहित्य-सृजन के लिए आवश्यक होती है। और भावयित्री प्रतिभा साहित्य-आस्वादन के लिए आवश्यक होती है। यह कवि के श्रम को सफल बना कर साहित्य-आस्वादन आनंद लेने में सहायक होती है।

कारयित्री प्रतिभा के पुनः तीन भेद है।

१) सहजा - यह जन्मजात होती है और वह पूर्वजन्म के संस्कारों की अपेक्षा रखती है।

२) आहार्य - इस प्रतिभा को शास्त्राभ्यास द्वारा अर्जित किया जा सकता है। अर्थात जिसे शास्त्राभ्यास द्वारा अर्जित किया जा सकता है वह आहार्य है।

३) औपदेशिक - जिसकी निर्मिति मंत्र, तंत्र, देवता, गुरुपदेश आदि के द्वारा जो प्रतिभा प्राप्ति होती है उसके औपदेशिक कहते है।

आ. हेमंद्र ने सहजा और औपधिकी ये दो भेद स्वीकार किए है। 'औपधिकी' उत्पाद्य प्रतिभा है।

२) व्युत्पत्ति :

व्युत्पत्ति का अर्थ है कौशल्य/निपुणता, पांडित्य या विद्वता एवं विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान। व्युत्पत्ति प्रतिभा को संस्कारित करती है।

आचार्य मम्मट ने 'व्युत्पत्ति' के लिए 'निपुणता' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ 'बहुलता' होता है। वे लिखते है - 'निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।' अर्थात निपुणता समाज जर्वान के अनुभवों, निरीक्षणों तथा शास्त्रों का अभ्यास विश्लेषण से निर्माण होती है।

रुद्रट - व्युत्पत्ति का स्वरुप स्पष्ट करते हुए कहते है -

"छंदो व्याकरण कला लोकस्थिति पद पदार्थ विद्यानात्।
व्युक्तायुक्त विवेक व्युत्पत्तिरियं समासेन्॥"

अर्थात छंद, व्याकरण, कला लोकस्थिति एवं पदार्थविज्ञान से उत्पन्न उचितानुचित सम्यक विवेक का नाम व्युत्पत्ति है। **राजशेखर** ने 'उचितानुचित विवेको व्युत्पत्ति' कहकर व्युत्पत्ति को उन्होंने विवेक वृद्धनी कहा है, जो कवि को श्रेयस्कर होती है। हेमचंद्र की **'औपधिकी प्रतिभा'** मूलरूप में व्युत्पत्ति या निपुणता ही है। निपुणता के कारण ज्ञानविस्तार होता है और ज्ञानविस्तार से भावविस्तार की संभावनाएँ होती है। निपुणता को ही वर्डस्वर्थ ने अंतर्दृष्टि का प्रशिक्षण 'Training of the inward eye' कहा है।

वस्तुतः व्युत्पत्ति शब्द का अर्थ अति व्यापक है। विविध शास्त्रों - सामाजिक, धार्मिक, कला विषयक, नीतिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, लोकशास्त्र, भूगोल, चित्रकरण, राजनीति, काव्य तथा अन्य कलाओं का बहुआयामी ज्ञान का अर्जन ही व्युत्पत्ति या निपुणता है। उसका काव्य-रचना में महत्वपूर्ण स्थान है। केवल कल्पना मात्र से काव्य में प्रभावात्मकता नहीं आ सकती। उसकी तीव्रता के लिए लोकव्यवहार तथा शास्त्रों का गहरा ज्ञान आवश्यक है। जिसके सहारे विचारों में पुष्टता आती है और साहित्यकार बहुश्रुत होकर अपनी रचना को असत्य, भ्रांत भाव, तथा अज्ञानमुलक दोषों से बचा सकता है, साथ ही वर्णविषयक की प्रस्तुति में सघन सौंदर्य प्रदान कर पाठकों में परिवर्तनकारी चेतना भर देने में समर्थ हो सकता है। परिवर्तन की चेतन देने का कार्य वही कर सकता है जिन में उचितानुचित का विवेक है। शास्त्र के चिन्तन-मनन, काव्य-परंपरा के अध्ययन तथा लोक निरीक्षण आदि से कवि में इस गुण का समावेश होता है।

३) **अभ्यास :**

प्रतिभा और व्युत्पत्ति की परिपक्वता के अतिरिक्त साहित्यसृज़न के लिए अभ्यास की भी अत्यंत आवश्यकता है। अपनी भावाभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए अभिव्यक्ति का अभ्यास करना कलाकार का प्रमुख कर्तव्य बनता है। काव्य रचना का पुनः पुनः निरन्तर प्रयास करते रहने की प्रवृत्ति को विद्वानों ने अभ्यास कहा है। कवि या रचनाकार को लिखने या सतत अभ्यास करते रहना चाहिए। संगीत में जैसे गायक को रियाज महत्वपूर्ण है वैसे ही साहित्य सृजन में साहित्यकार को पढना-लिखना आवश्यक है। इसी से उसकी रचना प्रौढ होती है। अभ्यास प्रतिभा का पोषक तत्व है, बिना अभ्यास से प्रतिभा सुख जाती है। प्रतिभा संपन्न व्यक्ति भी अभ्यास के अभाव में साहित्य सृजन में निखार नहीं ला सकते।

प्रतिभा और व्युत्पत्ति से संपन्न कवि अभ्यास द्वारा कवि-कर्म में कुशलता प्राप्त करता है - **"अभ्यासों हि कर्म सु कौशल्यावहति।"** यह सच है केवल अभ्यास के द्वारा काव्य-सृजन संभव नहीं है, परंतु निरन्तर अभ्यास काव्य-रचना के शिल्पगत सौष्ठव की अभिवृद्धि करने में निश्चित रुप से सहायक होता है। प्रतिभा और अभ्यास के योग से कविकर्म का उत्कर्ष होता है। परंतु उसके लिए अभ्यास की साधना आवश्यक होती है। जो लोग अभ्यास या

साधना को गौण मानते है वे नादान है। डॉ. चंद्रभानु सोनवणे कवि पंत का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए लिखते है - "न पिक प्रतिभा का कर अभिमान, मनन कर, मनन, शकुनि नादान।" मनन के कारण साहित्यकार की रचना में परिपूर्णता का पुष्टभाव झलकता है। **आ. दण्डी** ने अभ्यास को **'अमन्दश्चाभियोग'** कहा है। **आ. मम्मट** ने अभ्यास का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है - **"काव्यस्य कारणे योजनेच पीनः पुत्येन प्रवृत्तिः।"** अर्थात लगभग सभी आचार्य भामह, वामन, आनंदवर्धन तथा अभिनगुप्त आदि ने अभ्यास के महत्व को स्वीकारते हुए उसे प्रतिभा के परिष्कार के रुप में स्वीकारा है। वास्तव में अभ्यास कवि कर्म के लिए अनिवार्य है। उसके द्वारा काव्य में दीप्ति आती है। इसीलिए कहा गया है कि - **"करत करत अभ्यास से जडमति होत सुजान।"**

साहित्य सृजन के लिए जिस प्रकार केवल प्रतिभा या व्युत्पत्ति पर्याप्त नहीं है, उसी प्रकार केवल अभ्यास से भी कोई साहित्यकार नहीं बन सकता। अतः कुछ आचार्यों ने साहित्य हेतु के अंतर्गत समाधि का अन्तर्भाव किया है।

४) **समाधि :**

चित्त की एकाग्रता समाधि कहलाती है। **राजशेखर** ने समाधि को काव्य का हेतु स्वीकार किया है। उत्कृष्ट साहित्य सृजन के लिए समाधि एक उत्तम साधन है। बिना मन की एकाग्रता के किसी रचना का सृजन संभव नहीं होता। कुछ विद्वानों ने समाधि को अभ्यास का प्रतिरुप माना है, क्योंकि समाधि के लिए भी पहले अभ्यास की आवश्यकता होती है। समाधि आन्तरिक और अभ्यास बाह्य साधन है। **आ. वामन** ने समाधि के लिए 'अवधान' शब्द का प्रयोग कर लिखा है - **'चित्तैकाग्रमवधानम्'**। अवधान का मतलब है ध्यान। अभ्यास या कवि-कर्म में ध्यान या चित्त एकाग्रता की नितांत आवश्यकता होती है। अवधान रहित कार्य कार्यसिद्धि में बाधक बन सकता है। इसीलिए कवि कर्म के काव्य सृजन में मन की एकाग्रता (समाधि) आवश्यक समझी जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय काव्यशास्त्र के क्षेत्र में काव्य के हेतुओं पर पर्याप्त विचार हुआ है। प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास और समाधि इन हेतुओं में से कौनसा हेतु अधिक महत्वपूर्ण है, इसकी चर्चा अर्थहीन है। हर एक ने अपने अपने ढंग से मत प्रतिपादित किया है। किसी ने एक को, तो किसी ने दूसरे को महत्व दिया है तो किसी ने तीनों का समन्वित महत्व स्वीकारा है। अपने आप में कोई एक हेतु पर्याप्त नहीं है अपितु एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। वे सभी हेतु समन्वित एकाकार रुप में साहित्य सृजन का कारण बनते है। प्रतिभाशाली व्यक्ति को भी व्युत्पत्ति और अभ्यास का आश्रय लेते हुए समाधि धारण करनी ही पडती है। इस तरह एक दूसरे के पूरक होते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र है इसीलिए आ. मम्मट ने 'हेतु' शब्द का एक वचन में प्रयोग किया है, बहुवचन में नहीं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्रत्यक्षा प्रत्यक्ष रुप से प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को ही

साहित्य का हेतु स्वीकार किया है। सुकरात ने दैवी प्रतिभा को साहित्य का हेतु माना है तो अरस्तु ने अनुकरण की प्रवृत्ति साहित्य का मुख्य हेतु कहा है।

हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों ने भी संस्कृत के आचार्यों के आधार पर साहित्य हेतु को स्वीकारा है। हिंदी के आधुनिक विद्वानों ने भी इन्हीं साहित्य को अपने अपने ढंग से स्वीकार किया है।